शमशेर बहादुर सिंह

८११.८
शम/का

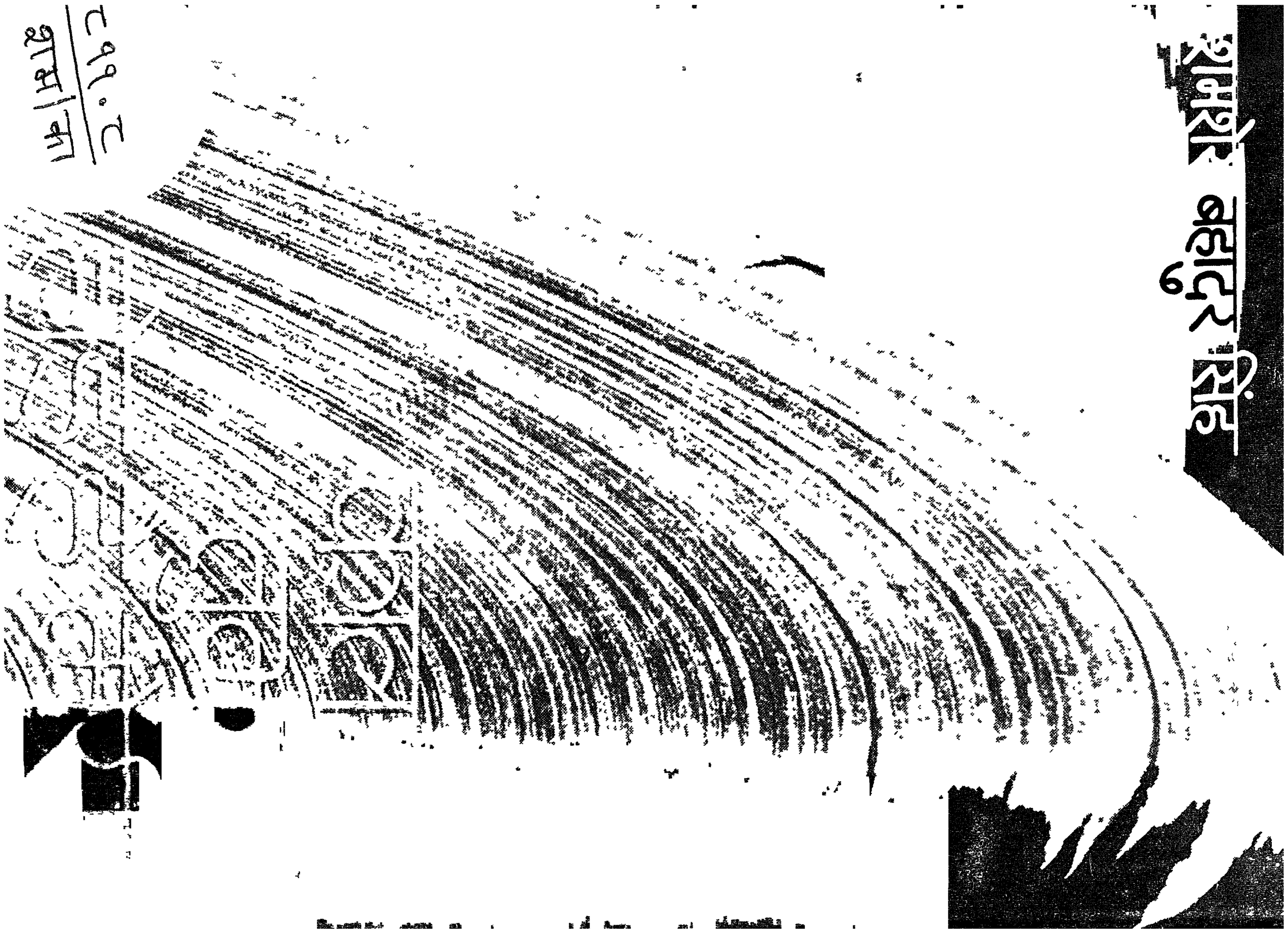

काल, तुझसे होड़ है मेरी

वाणी प्रकाशन

नयी दिल्ली-110002

काल, तुझसे होड़ है मेरी

शमशेर बहादुर सिंह

चयन

डॉ० रंजना भा० अरगड़े

ISBN-81-7055-156-0

वाणी प्रकाशन
4697/5, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
द्वारा प्रकाशित

प्रथम संस्करण 1988

स्वत्व : शमशेर बहादुर सिंह और
रजना भा० अरगड़े

: मूल्य 45.00 रुपये

आवरण : गोविन्द प्रसाद

अशोक कम्पोजिंग एजेन्सी द्वारा
कमल प्रिंटर्स, दिल्ली-110031
मे मुद्रित

KAAL TUJHSE HOR HAI MEREE
(Poems)
by Shamsher Bahadur Singh
(collection) Dr. Ranjana Bha. Argare

रंजना के लिए

सीधी-सी बात है

एक अर्सा हो गया है अपना कुछ भी, संग्रह रूप मे, छपे। मलयज ने अपनी इहलीला समाप्त करते-करते मेरे स्फुट गद्य का एक संकलन भी तैयार कर दिया था, संभावना प्रकाशन (हापुड) के लिए। इसमे 'दोआब' और 'प्लॉट का मोर्चा" दोनों है। "प्लॉट का मोर्चा" में मेरी कहानियाँ, स्केच और थोड़े-से संस्मरण हैं।

कविताओं का चयन और क्रमबन्ध भी उतना सरल नहीं है जितना मैं समझता था। कौन-कौन-सी कविताएँ न रखी जाएँ, कौन-सी रखी जाएँ—इसका फ़ैसला करते-करते मैं खुद ही खो जाता हूँ। शायद खोई हुई कविताओं में कही रुल जाता हूँ। पंतजी की पक्तियाँ है—

"मूल मनुज को खोज निकालो !" "फिर से चालो !..."

खोज ख़बर लाने के लिए मैं यही कही डूब गया हूँ।

मेरे सब हितचिन्तक मित्र एक-एक कर विदा लेते जा रहे है। जगत शंखधर का निर्णय (जजमेट); कविताओं को बेहतरीन क्रम देना; कही-कहीं संशोधन भी ! पुस्तक का नाम तक वह रखते थे और बल्कि हठपूर्वक रखते थे। वह रचनाओं को इस तरह देखते थे जैसे कवि स्वयं अपनी रचनाओं का मूल्यांकन करने के लिए उन्हें उलट-पलट रहा हो। मुझे आज तक मौक़ा नहीं आया कि उनके निर्णय से असहमत होता।

सीधी-सी बात है। यह मेरा नया कविता संग्रह है, जो आपके हाथ में है। इसमें अधिकांश कविताएँ तो पिछले दस-पन्द्रह सालों में लिखी गई है। कुछ अलबत्ता सन् '42 और सन् '80-'85 के बीच लिखी गई हैं। कुछ सर्वथा अप्रकाशित इधर की ही है। यह चयन (डॉ०) रंजना अरगड़े ने किया है। जिनका परिचय

मेरी कविताओं से नया नही है, उन्हें अपनी पसन्द या रुचि की काफ़ी कविताएँ इस संग्रह में मिल जाएँगी। उम्मीद तो है कि अधिकाश कविताएँ—अधिकाश नहीं तो कुछ तो ज़रूर सुधी पाठको को काफ़ी पसन्द आएँगी।

मैं सदा ही अपने मानसिक परिवेश को चित्रित करता रहा हूँ। परिवेश के साथ-साथ उसके माहौल को भी 'अपने पास' 'इतने पास अपने' खीचता रहा हूँ कि मेरा अन्दरूनी व्यक्तित्व, अन्दरूनी कवि और चित्रकार, अपने अक्स को उसमे उतरने से बाज़ नही रख सके।

जैसा कि 'दूसरा सप्तक' के वक्तव्य में कह चुका हूँ—"सारी कलाएँ एक-दूसरे में समोयी हुई है, हर कलाकृति दूसरी कलाकृति के अन्दर से झांकती है।" जो कलाप्रेमी दोनो कलारूपों के मुहावरे से परिचित है, वो मुझसे सहमत होगे। संगीत और काव्य का स्पष्ट अन्त.सम्बन्ध तबले और हारमोनियम की संगति में देखा जा सकता है। कबीर, मीराँ, तुलसीदास और सूर के पद भी गवाह है, जिनके शीर्षक के तौर पर हर गीत के ऊपर किसी-न-किमी राग-रागिनी का उल्लेख मिलता है। निर्दिष्ट राग-रागिनी के स्वरो मे ढलकर अगर पद गाया जायेगा, तो अर्थ और भाव-मर्म सहज ही ग्रहण हो सकेगा।

अगर इसी अनुभव को एक-दूसरे स्तर पर ले लें तो आधुनिक मुक्तछन्द में, जो छन्दो के गणों के नही, गद्य की लय की शरण जाता है, बल्कि सीधे-सीधे गद्य की स्वाभाविक बोलचाल की गति को आधार बनाकर चलता है···यानी गद्य की पक्ति को या वाक्य को प्रेषित करता है, कि स्वाभाविक रूप में गद्य के छोटे-बड़े टुकड़े, तुको का सहारा न होने पर भी धुँधले तौर से एक लय मे बँध जाते है, जिसे गद्य की लय कह सकते है। ग़ालिब का शेर है :

"फ़रियाद की कोई लय नही है।
नाला पाबन्दे - नै नहीं है।"

कोई बाँसुरी बजा रहा है,—बजा नहीं रहा है, अपने दुखते हुए ज़ख़्म को सहला रहा है। 'नाला' यानी आह-कराह, रोना-धोना। 'नै'—बाँसुरी। बाँसुरी कभी अन्तर की आह-कराह को बाँध नहीं सकती, क्योंकि 'नाला' बाँसुरी बजाने की कला के अधीन नहीं है, इससे आज़ाद है।

इसी आजादी की खोज मेरी कविता है।

मेरी कविता के निर्माण में आसपास की साधारण-सी वस्तु भी या कोई ऐसा व्यक्ति जो एकाएक मेरी कविता के पथ में खड़ा हो जाता है, मैं उसको, भी अपने

रंग में लपेट कर अपनी कविता में शामिल कर लेता हूँ। इसके बाद जो कविता का विकास होता है वो रचना की अपनी शर्तों पर होता है। मेरी अन्दर की अनुभूतियाँ झूठी न पड़ें इसलिए मै उस सामग्री मे और कुछ जोड़ देता हूँ और इस तरह कविता में एक नया पात्र आ जाता है, जिसका पहले मुझे आभास भी नहीं था। यह काम कुछ वैसा ही है जैसे किसी घटना, व्यक्ति या कविता अथवा गद्य में कोई वर्णन सामने आ जाये और उसमें मुझे कोई ऐसा बिन्दु मिल जाये जो मेरे सामने एक नयी कहानी का प्रारूप खड़ा कर दे। कहानियाँ भी प्रायः इसी ढंग पर लिख ली जाती है। कहानी का बीज कोई भी एक मामूली से मामूली घटना या डायलॉग या सहसा कोई चौकाने वाली चीज़ होती है। उस बीज को लेखक पल्लवित करके प्राप्त सामग्री से भी आमूल परिवर्तन करते हुए एक नया चित्र, एक नये व्यक्ति की कल्पना— यानी कि ये नया चरित्र, जो नब्बे प्रतिशत या अस्सी प्रतिशत सर्वथा काल्पनिक होता है, मूल बीज का स्पष्ट आभास उसमे कठिनता से होता है। या नही भी होता है मेरी बहुत-सी इधर की कविताएँ इसी पैटर्न पर लिखी गयी है। मै अपनी बहुत-सी ऐसी कविताओं के प्रसंग मे इसको इंगित कर सकता हूँ, जिनमें पात्रों का नवीनीकरण और पूरे प्लॉट का फ़्रेम इतना नया बन गया है कि मैने कभी सोचा भी नही था वो नये 'एलिमेंट्स' उसमें भर गये।

मेरे चारों तरफ़ जो लीला हो रही है, मै दूर-दूर तक देख रहा हूँ देश में और विदेश में; जो नया सृजन हो रहा है और कला-सृजन वो कभी-न-कभी (शायद शीघ्र) किसी एक या दो-चार कविताओं के रूप में जन्म ले —लेगा अवश्य !·····

एक अजीब तरह की लीला से मैं हर समय घिरा रहता हूँ, बहुत-से काव्य-कला-रूपों से। उनकों शब्दों मे प्रस्तुत करना लगभग असम्भव है, फिर भी रुपये मे दो-तीन आने भर तो वो प्रकट होकर ही रहते है।

मै जिन-जिन महानुभावों के प्रति आभारी हूँ वह इतने अधिक है कि संकोच होता है। कहीं और सही, डायरी के पन्नों में ही उनको 'फ़ुर्सत से' याद करूँगा। इधर बीमार भी बहुत रहा हूँ। तबीयत क़लम का साथ नहीं देती, और हर नाम मेरे लिए बहुत पवित्र और विशिष्ट हो गया है। सचमुच उन साहित्यकारों, कवियों, और कलाप्रेमियों की एक पूरी क़तार मेरे सामने, मेरा जायज़ा-सा लेती हुई मुस्कुरा रही है, निश्छल और सरल और बहुत ही अर्थपूर्ण स्टाइल से सिर हिला रही है और मैं बेहद संकोच महसूस कर रहा हूँ···।

'यूनानी वर्णमाला का कोरस' कविता का ब्लॉक देने के लिए मै 'साक्षात्कार' का विशेष आभारी हूँ। उन पत्र-पत्रिकाओं का भी जिन्होंने मेरी कविताओं को समय-समय पर खुशी-खुशी प्रकाशित किया है।

सुरेन्द्र नगर, गुजरात
23.3.88

अनुक्रम

तुमको पाना है अविराम 15

काल, तुझसे होड़ है मेरी

ग़ज़ल : (उलट गये सारे पैमाने) 19
बैल 20
अफ्रीका 23
रुबाई (भारत देश की ईद : 1980 : मुरादाबाद) 26
ईरान और अफ़ग़ानिस्तान 27
तुर्कमान गेट 29
धार्मिक दंगों की राजनीति 30
आओ, उनकी आत्मा के लिए प्रार्थना करें 33
मदर तेरेसा 39
काल, तुझसे होड़ है मेरी 40
ग़ज़ल : (राह तो एक थी) 41

वल्ले-वल्ले

स्वर्गीया रज़िया सज्जाद ज़हीर 45
बाबा हमारे, नागार्जुन बाबा 47
मित्रवर डॉ० प्रभाकर माचवे से 50
र० स० : एक हाफ़ सेन्चुरी (और बैटिंग जारी) 52
नेरूदा 61
'मेमायर्स' पढ़ने के बाद 62
आख़्मातोवा की कविताओं के कान्ताकृत (स्व० कान्ता पित्ती)
अनुवाद पढ़ने के बाद 64
एकान्त संघर्ष : एक मूल्यांकन 66
श्रुति के लिए 71

आइता-कप्पा आइता-कप्पा

यूनानी वर्णमाला का कोरस 79
मणिपुरी काव्य साहित्य की एक विहंगम नन्ही-सी झाँकी 85
कवि घंघोल देता है 93

व्यक्तित्व का अदृश्य सागर

प्रेम 97
प्रेयसी : एक, दो, तीन 99
मेरे अन्दर कैसी··· 101
चिकनी चाँदी-सी माटी 102
तुमने मुझे 103
प्रकृति-रूप 104
एक ठोस बदन अष्टधातु का-सा 105
रोशनी 106
ग़ज़ल : (वो दुश्मन मेरा) 107

काल, तुझसे होड़ है मेरी

तुमको पाना है अविराम

तुमको पाना है, अविराम
सब मिथ्याओं मे,
ओ मेरी सत्य !

मुझसे दूर अलग न जाओ ।
मुझको छोड़ न दो
कही मुझको छोड़ न दो
तुम्हें मेरे प्राणों की सौगन्ध ।

जाओ
किन्तु मुझमें बसकर
सुगन्ध की तरह
मेरे साथ
मै हवा की तरह अदृश्य ही जब हो जाऊँ
जहाँ कही जाओ ।

तुम मुझको दो

अपना रूप
अपना मद
अपना यौवन
अपनी शक्ति
अपनी माया
अपना प्रेम छल
अपना सत्य—मेरा !

ओ मेरी ही केवल तुम
मेरे साथ रहो
मुझको छोड़ो नही
स्वप्न में भी,
तुमको
मेरे प्राणों की शपथ

मलूँगा मैं वक्ष से तुम्हारे
अपने जीवन का समस्त वक्षस्थल
लिपटूँगा मै अंग-अंग से तुम्हारे
मधुरतम सुवास बन
उच्च से उच्चतर मै हूँगा तुम्हारे ब्रह्मांड में—
तुम्हारे हृदय में—
तुम्हारा ही बनूँगा मै, केवल तुम्हारा।
हूँ मैं तुम्हारा उपेक्षित भाव
सुधर-सा रहा हूँ पर धीरे-धीरे
अंगीकृत होने ।

ओ मेरी सुख,
मेरी समस्त कल्पना के पीछे एक सत्य
मुझ उपेक्षित को स्नेह स्वीकृत करो
मेरे जीवन की सुख
सरल सहवास का सौन्दर्य
मधुर ऐक्य सुख।

काल, तुझसे होड़ है मेरी

ग़ज़ल

उलट गये सारे पैमाने, कासागरी क्यों बाकी है।
देस के देस उजाड़ हुए, दिल की नगरी क्यो बाक़ी है।

कौन है अपना कौन पराया, छोडो भी इन बातो को
इक हम तुम है खैर से अपनी पर्दादरी क्यो बाक़ी है।

शायद भूले-भटके किसी को रात हमारी याद आयी
सपने मे जब आन मिले फिर बेख़बरी क्यो बाक़ी है।

किसका साँस है मेरे अन्दर : इतने पास औ' इतनी दूर
इस नज़दीकी में दूरी की हमसफ़री क्यों बाक़ी है।

सचमुच मुझको ऐसा लगा जैसे तुम बिल्कुल पास ही हो
साँस में अब तक वही सुनहरी दोपहरी क्यों बाक़ी है !

बीत गये युग फिर भी जैसे कल ही तुमको देखा हो
दिल मे औ' आँखों मे तुम्हारी खुशनज़री क्यों बाक़ी है।

शोर भजन औ' कीर्तन का है या फ़िल्मी धुनों का हंगामा
सर पे हि लाउडस्पीकर की टेढ़ी छतरी क्यो बाक़ी है।

कैसा सियासत का तूफान कि आग की लपटों में इन्सान
अपनो पर अपनों की ही बेदादगरी क्यों बाक़ी है।

धर्म तिजारत पेशा था जो वही हमें ले डूबा है
बीच भँवर के सौदे मे यह इक खंजरी क्यों बाक़ी है।

1984, उज्जैन

बैल

मैं वह गुट्ठल काली कडी कूब वाला बैल हूँ
जो अकेला धीरे-धीरे छः मील खींचकर ले जाते हुए
ठेले पर ऊपर तक लदा हुआ माल
स्टेशन से दूर गोदाम तक
चुपचाप धीरे-धीरे, आँखें बाहर को निकली हुई,
त्यौरी चढ़ी हुई, काँधे जोर लगाते हुए
सीना और छाती आगे को झुककर, ज़ोर लगाते हुए
रानें भरी हुई गर्म पसीने से तर, मगर
जोर लगाती हुई,
नथुने फूले हुए, साँस और दम
अपनी ज़ोर आजमाई मे लगे हुए
क्यों और किसके लिए ?
अपनी शाम के, अपनी सुबह के
बँधे हुए
चारे के लिए
उससे मीठी उससे नमकीन और प्यारी
चीज़
दुनिया मे और कोई है क्या ?
या···रात की ठहरी हुई, बहुत गहराई से बोलती हुई
चुपचाप बोलती हुई—दम साधे आँखे मीचे
सबको देखती-सी हुई शान्ति के लिए
गम्भीर, प्राणों में उठती हुई शान्ति···
आकाश के तारे, कुत्तों का पागल शोर
जो इस शान्ति को बढ़ाता ही है

पहरुओं की ठक्-ठक्, सीटियाँ···
और कही दूर किसी गाय के गले की घण्टियाँ
कटडो और बच्चों की
हवा मे
मासूम कच्ची-सी खुशबू, और घोडो का
खोखले गर्व से और बिला किसी वजह, बार-बार
टापे ज़मीन पर मारना
यह सब जो उस शान्ति को और
ठोस और स्थायी - सा बनाते है;
मालिक के खर्राटे, मालकिन की बच्चो को थपकियाँ
किसी बच्चे का रात मे रो उठना
यह सब रात मे कितना प्यारा लगता है
मुझे नही मालूम यह मेरे सपने का हिस्सा होता है
एक मीठी जागती नीद का, या जागरण का—
कोई अन्तर नहीं। मुझे यह महसूस होता है
कि ठेले को लगातार, सारी आँतों और
नसों के तनावो से खीचते हुए भी
जैसे
मैं
सो जाता हूँ
वह गहरा लगातार श्रम
पुट्ठओं को श्लथ कर देने वाला
श्रम
स्वयं मेरी नींद का कर्ब बन जाता है
मालिक पर तब जो मुझे गुस्सा आता है
उससे मेरा ज़ोर और बढ़ जाता है
मगर मुश्किल यह है
कि मालिक मेरी नस-नस को जानता और समझता है
वह मुझसे मेरी मूक भाषा में अच्छी तरह
बात करता है
मुझे वह इस तरह निचोड़ता है जैसे
घानी में एक-एक बीज कसकर दबाकर
पेरा जाता है

मेरे लहू की एक-एक बूँद किसके लिए
समर्पित होती है
        यह तर्पण किसके लिए होता है ?
सुबह के अन्न देव के लिए ?
शाम के अन्न देव के लिए ?
जिसका नाम चारा है :
यह एक मोटी और स्पष्ट बात है.
गीत नही
कि वह चारा है और मैं बेचारा ।
मेरा मालिक भी शायद एक अन्य दो टांगों पर खड़ा
        और मुँह वाला कपडा पहनने वाला
बैल है . एक गन्दा-सा नाटा-सा बैल
कमज़ोर मगर बहुत चालाक और गीत गुनगुनाने वाला
बैल···वो गीत मुझे अच्छे लगते हैं···मगर
        कभी-कभी मैं अपने इसी श्रम में
        कहाँ खो जाता हूँ, कुछ पता नहीं चलता
यह सारी दुनिया मुझे बैल मालूम होती है
बाँ ा ा ा ा ा ा ! बाँ ा ा ा ा ! बाँ ा ा ा ा ा '

1972-73

अफ्रीका

एक बराबर के चौकोर
दो पत्थर
सजाकर उसने रक्खे
एक के ऊपर एक
सफ़ेद के ऊपर काला

काला लडका
वह खेल रहा था
मालिक आया
हैं ! खेल रहा है !

हो ! हो ! हो !
ऊपर काला पत्थर
नीचे सफ़ेद पत्थर !

हैं ! चिढ़ा रहा है ?
सैड ! सैड़ !
सैड़ ! सैड़ ! सैड़ !

हाय ! हाय ! हाय !
हाय ! आह - आह !

लो मालक !
अब ठीक है ?
सफ़ेद पत्थर ऊपर !

हाँ ! हाँ ! हाँ !

अब ठीक है !

ओह ! ओह ! ओह !
हाँ हाँ
काले के ही बल पर
टिका है
सफ़ेद !
काले के ही बल पर !

हाँय ! हाँय !
चिढ़ा रहा है !!
सैड़ ! सैड़ ! सैड़ !
सैड़ !
नहीं नही नही !
मालक, अब लो !
अब लो !
अब दोनों एक···
एक बराबर है !
बराबर बराबर !
रखे हुए
अब ठीक हैं ?

ना ऽ ई !
सैड़ !
—उफ् ! हाय !

इन्हें दूर-दूर करो !

गुस्से में खड़े होकर
सफ़ेद पत्थर को ठोकर
मारकर
दूर कर देता है
जैसे ही कोड़ा उस पर
पड़ता है
वह उछलकर उसकी गर्दन
दाँत से दबोच लेता है ।

—हाय ! हाय ! हाय !
छोडो ! छोड़ो !
—ना ऽऽऽ ई
तुम सफ़ेद हम
    काला !
तुम्हें अब नाई
    छोड़ सकता !
नाई छोड़ सकता !

नेपथ्य में ढोल बजता है
डमाडम ! डमाडम ! डमाडम !

रुबाई

(भारत देश की ईद : 1980 : मुरादाबाद)

वह काम मुरादाबाद मे हम कर आए,
दुनिया में ऊँचा अपना परचम कर आए !
बच्चो की, जवानों की उमीदो की वो ईद !
उस ईद का हम जा के मातम कर आए !!

2

राष्ट्रीय स्वतन्त्रता-दिवस पूर्व की ईद—
आते ही,—स्वतन्त्रता-दिवस पर है शहीद ।।
है राष्ट्र महान ! राष्ट्र के धर्म महान् !
ये सब है मुरादाबाद मे क़ाबीले-दीद !!

ईरान और अफ़ग़ानिस्तान

एक होकर सारे अख़बारो का हल्ला देखिए !
साथ अमरीका के गोया ये भी दस्ता देखिए !

बह्‌रि[1], बेड़े औ' हवाई अड्डे ही काफ़ी न थे
'बेवतन' विस्थापितों का एक रेला देखिए !

साफ़ हक़ की बात रक्खी उसने सबके सामने
ये कुसूर ईरान का कितना बड़ा था देखिए !

एकदम तख़्ता हुकूमत का पलट देते है, ये
काम करते है सिफ़ारतखाने[2] क्या क्या ! देखिए

सरहदी गांधी, पठानों का वो ख़ान अब्दुलग़फ़्फ़ार—
सुनिए तो क्या कहता है इक मर्द-ए-दाना देखिए !

सोवियत फ़ौजी मदद काबुल ने जब माँगी तो आई
था मुनासिब ही क़दम ये हस्ब-ए-वादा देखिए !

हद्‌दे पाकिस्तान में सी० आई० ए० की साजिशें
सरहदी फ़ौजों को हमलावर बनाना देखिए !

हिन्दमहासागर के बीचोंबीच डियागोगार्सिया
हिन्द, ईरान, अफ़्रीका होंगे निशाना देखिए !

ऐटमी बेड़े, हवाईयान हजारों ही जमा
क्या है अमरीका की ताक़त का ठिकाना देखिए !

परचमे इस्लाम के है साथ अमरीकी निशान
हो गया कुर्बान डॉलर पर जमाना देखिए !

अहद-ओ-पैमाँ[3] अम्न की ख़ातिर है या है बहर-ए-जंग[4]
असलियत मे क्या है अमरीका का चेहरा देखिए !

1 समुद्री 2. दूतावास 3. वादे 4. जग के लिए

तुर्कमान गेट

ओस टपकी है कैसी जहरआलूद !
जख्म-ता-जख्म
बाग में है जमूद[1]
जो भी गुचा खिला
वो जख्मी था :
सुर्ख बेशक बहार का था बुजूद !

× × ×
× × ×

यही अपना मक़ान है, जो कि था !
हाँ ! यही सायबान है, जो कि था !
होट गोया है सूखे पत्तों से ।
खामुशी चीखती है आँखों से ।

× × ×
× × ×

इन्ही गलियों में थे तो ग़ालिब भी ।
"नीद क्यों रात भर नही आती ! ?"

1 गतिरोध की जडता

धार्मिक दंगों की राजनीति

जो धर्मों के अखाड़े है
उन्हें लड़वा दिया जाये !
जरूरत क्या कि हिन्दुस्तान पर
हमला किया जाये ! !

मुझे मालूम था पहले हि
ये दिन गुल खिलाएँगे
ये दंगों और धर्मों तक भि
आख़िर फैल जाएँगे

तबीयत को रँगो जिस रंग में
रँगती हि जाती है :
बढ़ो जिस सिम्त में, उसकी हि
सीमा बढती जाती है ! !

जो हिन्दु-मुस्लिम था वो
सिक्ख-हिन्दू हो गया
देखो !
ये नफ़रत का तकाज़ा
और कितना बढ़ गया
देखो ! !
हम इसके पहले भी
मिल-जुल के आख़िर
रहते आए थे

जो अपने भी नहीं थे,
वो भि कब इतने
पराए थे !

हम अपनी सभ्यता के
मानी-औ-मतलब ही
खो बैठे
जो थी अच्छाइयाँ
इतिहास की
उन सबको धो बैठे

तबीअत जैसी बन
जाती है, फिर बनती ही
जाती है,
जो तन जाती है आपस में
तो फिर तनती ही
जाती है !

हमारे बच्चे वो ही
सीखते है, हम जो
करते है;
हमें ही देखकर, वह तो
बिगड़ते या सँवरते है।

जो हश्र होता है
फ़र्दों का, वही
क़ौमों का होता है
वही फल मुल्क को
मिलता है, जिसका
बीज बोता है !

ये हालत देखकर
अपने जो दुश्मन मुल्क
होते है
हमारी राह में वो चुपके-
चुपके काँटे बोते हैं !

हमारे धर्मों की क्या-क्या न
वो तारीफ़ करते है
वो कहते हैं कि—हम तो
आपके धर्मों पे मरते हैं

ये है कितने महान
इनकी तो बुनियादें
बचाना है।
[दरअसल, हमको लड़ाकर
उनकी बुनियादें हिलाना
है !]

ये मुल्क इतना बड़ा है
यह कभी बाहर के
हमले से
न सर होगा !
जो सर होगा तो बस
अन्दर के फ़ितने से

ये मनसूबा है—
दक्षिण एशिया मे
धर्म का चक्कर···
चले !—और बौद्ध,
हिन्दु, सिक्ख, मुस्लिम
में रहे टक्कर !

वो टक्कर हो कि सब कुछ
युद्ध का मैदान
बन जाए !
कभी जैसा नहीं था, वैसा
हिन्दुस्तान बन जाए ।।

× × ×

आओ, उनकी आत्मा के लिए प्रार्थना करें

आओ, उनकी आत्मा के
लिए प्रार्थना करें
जो हमारे हाथों शहीद
हुए थे कल
कल ही तो !

आज उनका फिर एक
खुशी का त्यौहार
है—
आओ उनके शहीदों
के लिए
मातम करें और
उनकी आत्माओं
की शान्ति के लिए
प्रार्थना करें
क्योंकि आज
आज क्या हम
महसूस नही
करते
कि वो और हम
एक है ?
एक ही हैं ?

संकुचित से संकुचित
होते जाने के
बजाय,

आओ हम आज फिर
फैल कर वही
दुनिया हो जाएँ
जिसमें कल नही परसों
नही, उससे ठीक पहले
सब मिलकर हँसते थे
किलकारी मारकर
हँसते थे
जब हमें दुनिया भर
के बच्चे
अपने ही जैसे प्यारे
मासूम और पवित्र
फूल जैसे लगते थे
जब हमें माएँ, बहुएँ,
बेटियाँ
सब अपने ही परिवार
का, एक विशाल
परिवार का
सुखद मंगलमय अंग
लगती थी
और सभी बूढ़े-बुजुर्ग
अपने ही आजा, बाबा,
नाना, दादा· ·
जब एक दिन
एक क्या साल में
तीन चार दिन
ऐसे आया करते थे
जब देश के त्यौहार
हम सबों के एक साथ
आनन्दमय त्यौहार
हुआ करते थे···
क्या यह बात सपना ही
है ?

नही नहीं :
यह सब मेरे बचपन
का सत्य है
और मेरे कितने ही
साथियों और बुजुर्गो
के बचपन का
सत्य होगा !
आह, आज हम
कहाँ ढुलक गए है !

2

जब हम अपने भाइयो
की आत्माओं की
शान्ति के लिए प्रार्थना
कर रहे है या
फ़ातेहा पढ़ रहे है
ठीक उसी समय
देश के शत्रुओं के
घर घी के चराग़
जल रहे है
उनके दानवीय चेहरे
कैसे दमक रहे है
उनमें कोई-कोई कैसा
दानवीय अट्टहास
कर रहे है :
ठीक आज इसी समय
वे लोग जिनका
आज कोई त्यौहार
नही है,
त्यौहार मना रहे हैं
हमारे खुशी के मातम

की खुशी मना
रहे है···कि

यह भारत देश, लो
अब और
अपने कर्मो की
अधोगति में
और और नीचे
धँसा : अब
और अधिक सुगम
हो गया
सहसा आक्रमण के
अवसर पर इसको
पराजित करना !

भाइयो
हम यह न भूलें
कि हमारे साम्प्रदायिक दंगे
अनायास ही
उनके लिए ऐसे
शक्तिशाली हथियार है
जिनके लिए उन्हें
कुछ भी कुछ भी
खर्च नही करना
पड़ता :
केवल हमें और
—और उकसाने
भड़काने, लड़ाने
के लिए
उत्तेजनापूर्ण प्रचार
के उद्योग में जुटने के
सिवाय
उन्हें और कुछ नही
करना पड़ता :

सब व्यय
—शक्ति, धन-जन
मर्यादा, बल—
बुद्धि···
सब का दारुण व्यय
कुल हमे ही
करना पड़ता है
हर बार !
बार बार !
—बिना जाने, उनके
आक्रमण का अवसर
निकटतर लाने
सुगमतर बनाने
के लिए।

देश के शत्रु देशों को
हर कोई जानता है
वह पूरे देश के शत्रु है
किसी एक जाति
या सम्प्रदाय के
नहीं
पूरे देश के।

हमें कमज़ोर करने के लिए
अरबों खरबों का व्यय
कुछ भी नही है;
सैकड़ों-हज़ारों की
मृत्यु कुछ भी
नहीं है :
इतना बड़ा, नामी देश,
क्या अन्दर से
आसानी से कमज़ोर
हो जायेगा ?

कभी नहीं ।
अतः हमे अपनी गर्द
झाडकर उठ खड़े होना
चाहिए;
अपने भाइयों को गले
लगा, उनसे क्षमा
माँग, उनके
और अपने मंगल
की संयुक्त कामना
करते हुए
एक साथ मिलकर
प्रार्थना करते हुए
अपने अल्लाह और ईश्वर को
(—मेरा विश्वास है कि वे दो
नहीं हैं—)
अपनी शुद्ध भावना
अर्पित करनी चाहिए;
ताकि हमारे देश के सभी
बच्चे और युवाजन
देश के सारे त्यौहार
उन्मुक्त और निर्द्वन्द्व भाव से
आनन्दपूर्वक
निष्कटक और
सहज उत्साह से मना सकें !

आमीन !
इत्योऽम् ! शान्तिः !
शांतिः

19. 10. 83

मदर तेरेसा

माँ, तुम असली माँ हो
उनकी, जिन्होंने कभी नही जाना
माँ कैसी होती है।

शायद मृत्यु का देवता तुम्हारे चरणों पर
माथा टेकता है
और निवेदन करता है कि तुम
और तुम्हारे बच्चों को कम-से-कम कष्ट
और अधिक से अधिक जीवन की छूट दूँगा
जहाँ तक मेरे बस में है !

शायद उसे याद आता हो कि
मृत्यु और दिव्य अमर जीवन
दोनो को जिसने पैदा किया
तुम उसी का शुद्ध पूर्व अंश हो,
अतः उसकी भी माता हो !

1983

काल, तुझसे होड़ है मेरी

काल,
तुझसे होड़ है मेरी : अपराजित तू—
तुझमें अपराजित मैं वास करूँ ।
इसीलिए तेरे हृदय में समा रहा हूँ
सीधा तीर-सा, जो रुका हुआ लगता हो—
कि जैसा ध्रुव नक्षत्र भी न लगे,
एक एकनिष्ठ, स्थिर, कालोपरि
भाव, भावोपरि
सुख, आनन्दोपरि
सत्य, सत्यासत्योपरि
मैं—तेरे भी, ओ 'काल' ऊपर !
सौन्दर्य यही तो है, जो तू नहीं है, ओ काल !

जो मैं हूँ—
मैं कि जिसमें सब कुछ है···

क्रान्तियाँ, कम्यून,
कम्युनिस्ट समाज के
नाना कला विज्ञान और दर्शन के
जीवन्त वैभव से समन्वित
व्यक्ति मैं ।
मैं, जो वह हरेक हूँ
जो, तुझसे, ओ काल, परे है ।

ग़ज़ल

राह तो एक थी हम दोनों की :
आप किधर से आए-गए !
—हम जो लुट गए पिट गए, आप जो
राजभवन में पाए गए !

किस लीलायुग में आ पहुँचे
अपनी सदी के अन्त में हम
नेता, जैसे घास-फूँस के
रावन खड़े कराए गए।

जितना ही लाउडस्पीकर चीख़ा
उतना ही ईश्वर दूर हुआ .
(—अल्ला-ईश्वर दूर हुए !)
उतने ही दंगे फैले, जितने
'दीन-धरम' फैलाए गए।

मूर्ति-चोर मन्दिर में बैठा
औ' गाहक अमरीका में !
दान-दच्छिना लाखों डॉलर
गुपुत दान करवाए गए !

दादा की गोद में पोता बैठा,
'महबूबा ! महबूबा···' गाए।
दादी बैठी मूड़ हिलाए···
'हम किस जुग में आय गए।'

गीत ग़ज़ल है फ़िल्मी लय मे
शुद्ध गलेबाज़ी, शमशेर
आज कहाँ वो गीत जो कल थे
गलियों-गलियों गाए गए !

1982

वल्ले–वल्ले

स्वर्गीया रज़िया सज्जाद ज़हीर[1]

रज़िया सज्जाद ज़हीर
कल थी
आज नही है।
मगर
उनके अफ़सानों की तस्वीरे
देखो तो,
सब कही है—हमारे बीच
कीमती यादों की सूरत
ख़ामोश जागती···एक अजीब-सी,
मगर उदास नही,
तस्कीन की मूरत : गो
वो
सीधे—सामने बेतकल्लुफ़
मौजूद, गो नजर न आएँ सब कही
बयकवक़्त मस्कवा, लन्दन, दिल्ली,
लखनऊ, हैदराबाद कि बम्बई···
जहाँ-जहाँ भी
हम उनके अफ़साने जिस किसी को भी
पढ़ते-सुनते पाएँ
वहाँ-वहाँ उतनी ही ··उतनी
रज़िया आपाएँ
मुस्कराती हुईं, बेशक-ओ-बेगुमान : और
हमेशा यों ही, मौजूद !

मध्यवर्गी पीड़ा के इस हुस्न के अफ़साने

पढ़ने-सुनने वाले जब तक कि
इस जहाने फ़ानी मे पाए जाएँगे,
और यह क़ीमती सर्माया
दूर-दूर तक ज़िन्दा है,
यह खूबसूरत संजीदा इन्सान-दोस्त फ़न्कार
ज़िन्दा-ओ-पायिन्दा ।[2]

1. स्व० रज़िया सज्जाद ज़हीर उर्दू की प्रसिद्ध कहानी लेखिका थी, जिनकी रचनाएँ देश-विदेश की अनेक भाषाओ मे अनूदित होती रही। वह प्रगतिशील लेखक सघ की नीव डालने वाले प्रसिद्ध चिन्तक-आलोचक स्व० सज्जाद ज़हीर की पत्नी और उनके सघर्षों की साथी थी।
2. स्थायी रहने वाला।

बाबा हमारे, नागार्जुन बाबा

वाबा हमारे, अली बाबा
नागार्जुन बाबा !!

'खुल सीसेम !' सबों के सामने—
कहते—सबों के सामने—
ख़जानों की गुफ़ाएँ
सबों के लिए खुल पड़ती,
क्लासिक क्रान्तिकारी ख़ज़ाने

बहादुर कविता के जीते-जागते,
कभी न हार मानने वाली जनता के
बहादुर तराने
और ज़िन्दा फ़साने
आँखों को चमकाने वाले,
दिलों को गरमाने वाले,
आज के इतिहास को
छन्द में समझाने वाले :
—कभी धीमी गुनगुनाहटों में,
कभी थिरकते व्यंग्य में,
कभी करुण सन्नाटे में,
तो कभी बिगुल बजाते
और कभी चिमटा;

कभी बच्चों को हँसाते,
तो कभी जवानों को रिझाते,
और बूढ़ों की आँखों मे
मस्ती लाते,
—ऐसे ख़जाने कविता की
झोली में बरसाते
हमारे बाबा अली बाबा
नागार्जुन बाबा !!

× ×

"काहे घबराऽऽ एऽ !!"
इस फ़िल्मी गीत के बोल
अपने बेटे के साथ
मिलकर गाते हुए
जब मैने सुना था
—वह समाँ मुझे याद है !

चुटकी बजा-बजाकर,
मौज से भूख और अभाव को
बहलाते हुए,
मेरे अली बाबा,
गीतो के दस्तरख़ान बिछाए,
कविताओं के जाम चढ़ाए,
अभावों की गहरी छाने,
बेफ़िक्र, मस्त,
इसी मस्ती से क्रोध और आवेश के
कड़ुए घूँट को
किसी तरह मीठा-सा कुछ बनाए,
जनता के, जलते हुए अभावों की
आग में

नाचते हुए
अजब अमृत बरसाते
अनोखे ख़ज़ाने लुटाते,

आत्मा को तृप्त करते,
युग की गंगा में गोते लगाते
अद्‌भुत स्वाँग बनाए,
आए मेरे बाबा अली बाबा
नागार्जुन ! !

मित्रवर डॉ० प्रभाकर माचवे से

[मेरी षष्ठी पूर्ति के अवसर पर सुहृदवर कवि-मित्र डॉ० प्रभाकर माचवे की स्नेहसिक्त कविता के उत्तर मे जनवरी 1971 मे लिखी यह कविता पाठको के मनोरजनार्थ यहाँ प्रस्तुत है—श०]

चौधरी साठे तो हुए, पडत
पाठे कहाँ हुए !
और भाई गुनी,
बडे तो गुन से ही माने जाते बडे,
उम्र से कहाँ ! —चाहे जितनी सीढियाँ चढे ।
तुम तो जानो हो, भगत,
यहाँ तो
ज्ञान की बहुत ही झीनी चादर बुनी !
सो
अपन तो ठिर रहे हते ।
उम्र की सर्द हवाएँ
करती है सायँ-सायँ ।
एक विराना-सा है
—तुम्हें तो है सिगरे पते—
दोस्तों की भीड़ मे क्या बताएँ
कोई-कोई ही चेहरा नज़र आवै
पहचाना-सा है;
वर्ना आज
यादें है दुनिया की बहुत ही
तीखी (कुछ मधुर भी, कुछ) बहुत···

दूर की सुनी हुई मींड़ सी ! ···हाँ !
हाँ,
फिर भी हिम्मत तो नही हारे हैं, दोस्त !
जी कडा है (कुछ विश्वास ही सहारे हैं, दोस्त)
बाकी तो बाक़ी ही रह जाएगी
अपन लोगों की, कौन जाने,
लम्बी-सी उम्र के बाद एक उम्र
चुने हुए मौन पाठकों की मुलाक़ाती
रह जाएँगी।
कुछ चुनी हुई साँसें अपन लोगो की,
बहुत ही थोड़े से बोल, कुछ
दिलों मे जैसे मीठी फाँसें
या अजब लहरीले-से मौन के, कौन जाने,
कोई दो अणु अनमोल !

1978

र० स० : एक हाफ़ सेन्चुरी (और बैटिग जारी)

यों तो मैं एक कविता 'लिख गया'
अभी बैठे-बैठे
रघुवीर सहाय पर
जबानी
और उसे भूल भी गया, या उसे दुहरा कर
याद करना न चाहा
अगर्चे वह अच्छी कविता थी (खैर)—
मगर
बहुत अच्छी थी (खैर—)

मगर मैं अब भी उसकी 50वी
सालगिरह
बैठा मनाए जा रहा हूँ···अकेला
बिना इसमे
किसी को शरीक किये

ना . मुझे इसमे किसी को शरीक/नही करना

[और मैं कह नही सकता कि यह
रचना—जो भी मै लिखूँ—
अगर लिखूँ—
उसे, उसे भेज भी दूँगा ··
क्योकि यह कोई ख़ास चीज़ तो नही हो रही
कोई खास बात तो नही ··]

अस्तु ।
[शायद अस्तु से ही वह कविता शुरू होनी है]

/उफ्
आख़िर मै उसे लिखना क्यो चाहता हूँ, उस कविता को !
अस्तु···
मै एकदम यहाँ ब्रेक लगाता हूँ/

★ ★
★

ये तीन तारे लिरिक का
विराम है
हाँ
क रो रोऽऽ क रो र हा···
क रो रोऽऽ क रो र हा···
क रो रोऽऽ क रो र हा···

क हाँ·· तक क हाँ···
त क··· ···क···

यकायक
यह अन्तरिक्षीय गति की शटल-सी क्या
गतिमान हो गयी
मेरे दिमाग में
मेरी जागती चेतना में ?

कही दूर-पार से
स्मृतियाँ
बहुत-सी
इकट्ठा हो रही है
बहुत-सारी एक-साथ
और मैं उन्हे हटाकर परे कर रहा हूँ
—उनके बिम्ब मात्र यानी
संक्षिप्ततम रूप मात्र
ग्रहण करने के लिए
अस्तु मैं बहुत दूर पहुँच गया···
जहाँ—क्या है ?

होंटों में औत्सुक्य · प्रश्न/दृष्टि मे

बहुत कुछ एक साथ सीख लेने का धीर—
अधीर झुकाव

नाटे कद मे, एक बॉल की तरह दूर तक उछल जाने का
आयोजन-सा
और एक निरस्त्र करने वाली सादगी···के साथ एक
साहसिकता, संकोच का दामन थामे हुए।
बात बहुत पहले की है।

झरने है बिजली की
लपक पर लपक दूर तक
क्रिसक्रास का यकायकी पन
लगातार

और फिर फिर फिर फिर फिर
हवाएँ हवाएँ···मधुर और क्रूर भी
और बेहयाइयाँ लिये हुए कभी-कभी
और ख़ाहमख़ाह साहसी

और नीचे

समुद्र के उत्ताल उतावलेपनों का
मनुष्य को नगण्य बनाने वाला संगीत है
अरे तुच्छाति तुच्छ···
ऐसे समुद्र की सिम्फ़नी के बीच
रघुवीर सहाय

हाय रे संसार सागर
(बक़ौल नरेश मेहता ज़बानी
और भवानी मिश्र छन्दोबद्ध)

★ ★

फिर उन्होने संगठन किया
साहित्य संपादन दायित्वों का
ललित भाव से,
फिर अललित डॉयलाग-भाव से
एक, सांगोपांग रूप से आधुनिक,
साप्ताहिक का—गम्भीर, सामूहिक, सामाजिक
दृष्टि से ।
ख़ैर★★★मगर
अपना क्या किया ?

उनका सृष्टा कवि
और कवि के अन्तर में
व्यंग्य नाटककार अति
शालीन रूप से अतिशय तीखा
कवि अपनी सारी सादगी में
पे ची दा
हमारे घर, आँगन, हाट, बाज़ार, दफ्तर
का अपना, हाँ अपना !

क्या ? मलीदा ।

★ ★

मगर वह क्या उम्दा कविता थी जो मै
भूल गया
'लिख कर' जबानी ? एक बड़ी अच्छी चीज थी
···जाने दो— —मगर मै कैसे
जाने दूँ !
वह इतनी अच्छी कविता थी आह ! ! ···

2

र० स०
मैं आज तुम्हारा 50वाँ जन्मदिवस
अकेले मन ही मन चुपचाप कितने
आनन्द से मना रहा हूँ मै ही
जानता हूँ कितने···! !
—चाहता हूँ मै तुम्हें अपने कुछ
d o o d l e s भेंट करूँ
कुछ बिल्कुल meaningless paintings
या poems
कुछ तुके कुछ
गीतो की लहरें
लहरें महज़

कुछ ताल
और कुछ महज़
आधे-आधे शेर (···या पूरे ?···)

कहो तो क्या न कहें:!
फिर, कहो तो क्यों कर हो !
/जो बात बात मे आ जाएँ वो···/

हमारा दिल है कोई ? आह की हुए खामोश···

जाओ, जाओ, तुम्हारी क़सम देख ली
/अब आइन्दा हमे···
मुँह दिखाना नही
"यही जाना कि कुछ न जाना, हाय
सो भी इक उम्र मे हुआ मालूम !"
फ़कीराना आये सदा कर चले
/मियाँ खुश रहो
हम दुआ कर चले !"

"तुझे अठखेलियाँ सूझी है
हम बेज़ार बैठे है"

शमशेर, तेरी बात हमे याद रहेगी !
तुक जोड़ के बोलो भी, तो फ़रियाद रहेगी !

तुमने इस कृतघ्न [—बहुत तो नही—] हिन्दी दुनिया को
बहुत कुछ दिया । अनेक
रंग की कहानियाँ । कई
मि जा ज के छन्द और मुक्तछन्द ।
प र छा इ याँ और रो श नि याँ ।
ना ट क के सन्दर्भ दर सन्दर्भ
तु म ने ए क 'गॅ वा र' संस्कृति को
शा ली न ता और पी ड़ा और हॅ सी
और हँ सी को मर्म दिया और
अ ट् ट हा स को अ र्थ । तुमने पत्रकारिता को
स च मु च
दि शा दी , वि वा द को उद्देश्य दिया,
और श ह री स भा-सो सा य टी को चौपाल ।
भाषाओं को उनके रिश्ते

पहचनवाए अवाम के बीच
और मुझको हार्दिकता
मौन हार्दिकता दी और एक
आश्चर्यजनक आत्मालाप की
आश्चर्यजनक तटस्थता
एक निर्वैयक्तित्व से
—अगर्चे प्यार एक लफ़्ज है महज़
बल्कि लफ़्ज भी नही—
"प्यार कर सकता हूँ"
या कुछ ऐसा ही मेरा [उल्टा] भरम है

★

सरहदो के आरपार
मुकफ़्फ़ल कमरों के इधर और उधर
एक ही साथ
तंग बोसीदा आँगन और चहकते पाँश
ड्राइंगरूमो मे एक साथ एक सैम
फिर भी अपने गुप्त घोंसले मे तनहा
मुस्कराते कड़वी-मीठी मुस्कराहट
इस दुनिया को जाते और अपने को उसमे
ठहरा हुआ
दे ख ते
और इसी पर खूब हँसते
और दूसरों का ग़म ग़लत करते
(अपना नही)
कभी-कभी भूल जाते
इसलिए कि कुछ याद रखना था
ऐन हिन्दुस्तानी ऐन मध्यवर्गी एक
पू र्व यू पी य
औ ऐन बडे-आए-इन्टरनेशनल-के-बच्चेऽ
से बराबर मिलना और अपने को
जस-का-तस रखना,
डिगना नही, अगर्चे यारों का कुछ और
खयाल हो,

हँसना और उन्हे—सबको 'समझे' रखना
दिल ही दिल
और 'कोई शिकायत नही' (शायद कोई
शिकायत नही
जहाँ तक मै समझता हूँ)
और अच्छे गीतों के रसिया। नही ?
हाँ। और बड़े-बड़ों की तह को
टटोल लेना, एकदम . कितने पानी में है
बडी-बडी बातों के छोटे-छोटे मुँह
पकड़ लेना
फिर उन्हे ऐसे
अ चा न क
बि रा ना
एक सेकेंड के लिए
कि उनकी तबीयत खुश हो जाय

पड़तालना कला को और चुप रहना
सब कुछ समझना और चुप रहना
बहुत ज़्यादा न पढ़ना मगर बहुत
कुछ जानना

र० स० मुझे ज़ियादा अच्छा लगता है
रघुवीर सहाय से :
सक्षिप्त है न—"जो कि कल की आत्मा है"
अ र्था त्
एक संक्षिप्तता।

मुझे याद आती है।···
और एक मच्छरों की रात
भला कहाँ की ?
और एक नटखट लड़की।
···और एक सहमा हुआ लड़का

मै भी तो उस दौर से गुज़र चुका हूँ···!

फिर उसकी वयस्कता ।
और उसकी शम्शादक़द पत्नी
प्रेमलताजी की मित्र, अवश्यत: दु:खी
'जाने क्यो' और
घरेलू भरेपूरे ग्रेस के बावजूद
दु:ख और समझदारी
को सम्हाले कन्याओ को सुयोग्य
वर योग्य बनाने का मध्यम मध्यमवर्गीय—
सा अन्ततोगत्वा सफ़ल-सा संघर्ष और
कर्ज और फिर दायित्व पर दायित्व,
"और कोई उसे समझता नही"
और कोई क्यो समझे ? !
···समझे भी तो असह्य···!
हाय रे संसार सागर !

★ ★

और साहित्य का चर्खा
बड़ा-सा, गंभीर साहित्य का, चर्खा
समाजवादी चर्खा
आन्दोलनो से तटस्थ आन्दोलनकारी
चर्खा
मंच पर मंच से बाहर का नाटक
नाटक मे नाटक
जो फिल्म मे है वह किसी तरह
महान बन कर साहित्य में आ जाय हॉ काश !
नही आ पाता, इसलिए फिल्म से
नफ़रत-सी । शायद मै गलती पर हूँ ।

'र०स०' मुझे अच्छा लगता
है । इसमे एक सादगी है । सरलता
के साथ सारतत्व जैसा-कुछ ।
और 'रहस्य' का 'र' ख़ामख़ाह
इससे बँधा हुआ ।···"रंगशाला में
सविनय आपका" ।···"रग-रग से

वाकिफ़, साहब, आप क्या
कहते है ।" फिर भी,···रहो
सलामत —ग़ालिब के प्यारे मुहाविरे
में—"हज़ार बरस . और हर
बरस के हो दिन पचास हजार !"
पचास···अरे पचास कोई उम्र
है ?! और, भला सौ भी क्या
उम्र है ? हमारे यहाँ हजार-हजार
कई-कई हजार साल तक लोग
जीते रहे है । अरे बल्कि जानने
वाले कभी-कभी छुपाते नही, कि
···अब भी जी रहे है ।

देखिए आख़ीर में मैं प्राणायाम
और आसन की बात करने जा
रहा था···और मुश्किल
परहेज़ो की । इसीलिए बस्स— —
यही बन्द करता हूँ ।
अपनी सारी दुआ और
प्यार के साथ

—शमशेरजी

नेरूदा

तुम्हारे साथ
विश्वव्याप्ति बन जाने की
एक धडकन यह···मेरी एकान्त मानव
यह
कैसी है !

प्रेम और मनुष्य और पर्वत शृखला
और सागर का
यह पार्थिव यथार्थ
टकराव तुमुल
संघर्ष···एक निरन्तर आन्तरिक
सम्मिलन की उपलब्धि ।

सह व्याप्ति का यह क्षण
मेरे अन्दर जो यह
अपनाव तनाव का
—वही तो तू है
ह मा रा ने रू दा !

'मेमायर्स' पढ़ने के बाद

पश्चिम ने
ख़ामख़ाह
नेरूदा से
दहशत खा-खा कर
उसे महान
महान बना दिया

वह एक रोमानी
मध्ययुगी
वीर-नायक

कविता की मध्ययुगी आन बान के साथ
आधुनिक समाज के समन्दर
और पहाडों
और पठारो और मैंदानो को फ़तह करता
तमाम महाद्वीपो में

आज़ाद घूमता रहा
आज़ाद हवाओं की तरह
तूफ़ानी समन्दरो के आज़ाद रेलो की तरह
कभी खत्म न हो सकने वाले जगलों
बेहिसाब हवाई हुकूमत के विस्तार की तरह
तारो की दूर दराज़ चमक—
चमक जो हमारी पुतलियों मे रहती है

सपनो तक मे—उसकी तरह
निर्द्वन्द्व, आजाद हवा पानी आग की तरह
इन्सानो के दिल की आदिम
उम्मीद की तरह.....
होता हुआ भी गोया न होता हुआ
और न होता हुआ भी, बहुत अधिक होता हुआ
—उसे एक ऐसे सीधे-सादे बेचारे नेरूदा को

खाहमखाह
पश्चिम ने और नितान्त कल्पनाहीन
नयी दुनिया की मशीनी शक्तियो ने
महान बना दिया बना दिया
तो बना दिया...
फिर तो वो बन ही गया ! !

अब क्या हो ?
अब कुछ नहीं हो सकता ! !
आयन्दा ऐसे कवियो की तरफ़
बिल्कुल
ध्यान नहीं देना चाहिए

आख़्मातोवा की कविताओं के कान्ताकृत
(स्व० कान्ता पित्ती)अनुवाद पढने के बाद

नाव एक जा रही है
पाल उठाये
सूरज के मुखडे के सामने
दूर तक
नाव वह मेरी है
मैं तट पर हूँ

मै उस स्थान को चूमना
चाहता हूँ
जहाँ उसने अपना सर रखा था
तुम्हारे वक्ष पर
वह स्थान बहुत ही मुक़द्दस है

मेरे लिए
— क्योकि वह मेरा बहुत ही
प्रिय शायर है
वह स्थान तुम्हारे वक्ष का
बहुत ही पवित्र है

वह स्थान बहुत ही पवित्र है
तुम्हारे होंटो पर
जहाँ उसने अपने होट
रखे थे

तुम्हारे होंटो पर
मैं उन्हें चूमूँगा नही

मगर मेरा माथा सदैव ही
उन पर झुका टिका-सा रहेगा
एक अनन्त सिजदे मे
क्योकि वह बहुत ही पवित्र
बिन्दु है
जहाँ मेरे प्रियतम शायर
के ओठों ने बोसा
दिया था ।

'यह आरताने- शे'र है
झुकता है सर जहाँ ।[1]'

12. 3. 85—दोपहर

1. जोश मलीहाबादी का मिस्रा

एकान्त संघर्ष : एक मूल्यांकन

[एक लम्बा नोट :

उन दिनो मै कुछ छन्द विधाओ को समझने का सफल-असफल प्रयास कर रहा था। कौतुक-वश देखना चाहता था कि आधुनिक खडीबोली पुराने, मसलन्, सस्कृत छन्दो को कहाँ तक बोलचाल के अपने सहज लहजे मे सँभाल सकती है—रचनात्मक स्तर पर उनको अपना बना सकती है। बल्कि यह भी अनुभव करना चाहता था कि मुक्तछन्द की उपलब्धियाँ भी कहाँ तक उस प्रक्रिया का अग बनी रह सकती है। अपना यह एकान्त प्रयोग-प्रयास चल ही रहा था—कि नेमिजी का 'एकान्त' सामने आया।

मेरी एक अर्से से तमन्ना थी कि नेमिजी का सग्रह प्रकाशित हो और उसका नाम भी मेरे दिल मे fixed था 'मोरा कहीं बोला'! वो मसल है न, जंगल में मोर नाचा किसने देखा।···यकायक स्पष्ट सुनाई दिया, एकान्त मे मोरा कही बोला। मैं नौस्टैल्जिक हो उठा।

आरम्भ मे ही सग्रह को दो-तीन बार पढ़ गया, अनेक स्थलो पर, देर-देर तक ठहरते हुए। मै इस कवि के असली व्यक्तित्व को अपने लिए अच्छी तरह स्पष्ट कर लेना चाहता था। उसकी कविता में वह खास बात क्या थी जो मुझे चुपचाप पसन्द आती रही है। मैंने मोटे तौर पर कुछ यो उसकी सक्षिप्त परिभाषा कर ली अपने लिए,—कि उसका एक उच्च मध्यवर्गी नागर स्वर है। वह सयम का आग्रही है। तरल ईमानदार सकोच उसे जकड़े हुए है, न जाने क्यो। मै इस सकोच की तहो को भी टटोलना चाहता था।

सन् '42-'43 से लेकर '46-'47···बल्कि '52 तक के वर्षों मे, बम्बई और इलाहाबाद···में मैं खो गया। मेरी आँखों के आगे एक रील-सी खुल गई···विशेषकर इप्टा (इडिण्यन पिपुल्स थियेटर) के ससर्ग, और पी० सी० जोशी के प्रेरणाप्रद अनुशासन मे हार्दिकता से आगे बढ़ते, बहुत कुछ झेलते, बहुत कुछ भ्रममुक्त भी होते—नेमि परिवार के जीवन-सघर्ष की रील। ···वह उनका सामन्ती सुविधाओ के वातावरण को हठात् त्यागना और बजारों के-से जीवन को अपनाना, और फिर अनेक सगतियों और असंगतियों के बीच अपने कलाकार बुद्धिजीवी को किसी भी प्रकार समाप्त न होने देने का सघर्ष·· सब कुछ सजीव-सा हो उठा—दिल्लीपूर्व का उनका पूरा जीवन।···जिसकी पूरी आन्तरिक अभिव्यक्ति यह 'एकान्त' है।

तो मेरी प्रस्तुत कविता···लगभग तीन साल के अर्से मे धीरे-धीरे गढ़ी जाती हुई···इसी एकान्त की काव्यविश्लेषणात्मक समीक्षा है।

यह एक प्रयोग है। आरम्भतः और मूलतः मात्र अभ्यास के लिए।

इसमे जो 'निष्कर्ष' स्थापनाओ जैसे जान पड़ते है, वे स्वय सशयास्पद हो सकते है। शायद है। और वे तथाकथित 'स्थापनाएँ' स्वय मेरी अपनी अन्दरूनी रचनात्मक समस्याओ का भी जायज़ा लेती है, कही न कही। —मसलन 'कोलरिज' के इमेज के माध्यम से।

मैं कोई दार्शनिक नहीं—मार्क्सीय भी नही, दार्शनिक। पर मैं अक्सर मन ही मन सोचता रहा हूँ, कैसे कोलरिज् का अद्भुत कवि आरम्भ मे ही प्रायः बुझ-सा जाता है, और फिर उसकी कलामूल्यों-सम्बन्धी दार्शनिक बाते ही रह जाती हैं। वह मुझे अपने अन्दर एक छाया-सा डोलता आज भी कही न कही महसूस होता है—कल्पना और भावना का विश्लेषण करता, दार्शनिक, कुबलाख़ानी प्रसुप्त लोक का सजीव स्वप्ननिर्माता 'दार्शनिक' कवि (खोया-खोया) और जब वो खो गया, तो खो ही गया। यह मेरा अपना गहरा गुप्त भावबोध है जो मेरे अन्दर से निकलता नही। बरबस उसका इमेज मेरे सामने तैर जाता है। उसकी सगति यहाँ है या नही, मैं ठीक-ठीक नही जानता। मगर एक यथार्थ है वह मेरी प्रतिक्रिया की पृष्ठ-भूमि में।

तो नेमि की कवि प्रतिभा···क्या वो जरूरत से ज्यादा शालीन और विनम्र रहे हैं ? · मानो अकारण ही दबाई चली जाती गई—अधिक महत्त्वपूर्ण दिखने वाले व्यक्तियो द्वारा;—पर जो अन्ततोगत्वा कवि के रचनात्मक विकास के लिए विशेष प्रासंगिक नही निकले। कम से कम मुझे ऐसा ही लगता है। अकेले मुक्तिबोध एक ऐसे अपवाद हैं जिनसे प्रेरणा और प्रोत्साहन का पारस्परिक सहयोग नेमि को बराबर मिलता रहा। पर घटनाचक्र से दोनो मित्रो के सघर्षों का पथ एक-दूसरे से दूर ही होता गया और अलग पड़ गया। नेमि का अपना कवि-स्वरस्वयं अपनी जमीन पर ही धीरे-धीरे सशक्त और व्यजनापूर्ण होता गया। अपनी ही एकान्त जमीन पर।

बहरहाल नेमिजी की कविताएँ मुझे बराबर आकृष्ट करती रही हैं। अपने ब-ज़ाहिर quiet tone के कारण; और आन्तरिक गरिमा और भावना की सच्चाई के कारण, निर्दोष अभि-व्यक्ति और शैली के सहज सयम के कारण; और अपनी स्पष्टता के कारण। विशेष रूप से इसलिए भी, कि उन्होने कभी भी 'कविता लिखने के लिए कविता' नही लिखी। इसलिए उनकी हर पक्ति मुझे सच्ची और खरी लगती है।

यह सच है कि हम कविता को क्लासिक और रोमांटिक मे नही बाँट सकते : वह निरर्थक होगा। मगर रचनाकार के 'मिजाज' की पहचान के लिए ये दोनों शब्द मुझे बहुत ही सुविधा-जनक लगे है। नेमि के यहाँ रोमानी तरग की कई प्यारी कविताओ के बावजूद (मसलन वो 'मोरा कही बोला' एक स्वस्थ उन्मुक्त गीत), उनका मिज़ाज मुझे क्लासिक ही अधिक लगता आया है। वाज़े रहे, कि मिजाज का यह भेद सुधी पाठको के वर्ग मे भी नज़र आएगा। क्लासिक quiet tone—वो चाहे गहरी उदासी या गहरी वेदना और कोई कचोट दबाये हुए हो, वह अपनी अभिव्यक्ति की मर्यादा के कारण ही हमें प्रभावित करता चलता है।]

1. क्लासिक आग्रह

[तनुमध्या]

भा वा कु ल
स न्ना···ऽ टा
ही क वि ता
क्यों
चि न्त न
दु वि धा क्रा न्त···
आ त्म मा
श ल थ को ल् रि ज
(क्ला सि क क वि
ने मि,
सं य त् स्व र
शि ल्पी)
दे खा ?···
फि र दे खो
ता र क
प र ध र्मा
मा नो शि शि रा क्रा न्त
पि क् - स्व र
स ह मा - सा
म न्थ र् ग ति
रो मा न्
मो रा
क हिं बो ला !
सं श य स्व र
सा धे
सं य त्
क वि
ने मि

2. शिखर की ओर

तुम हजार उन्हें भूलना चाहो नेमि,
न छोड़ेगे तुम्हे वो
वो अधूरे - अधूरे फ़साने
वो बहारों के मंच
वो जब हम खुद एक
गुलाब का
पर्दा थे गोया
दहकता हुआ, और वो गीत
हैरान, ख़ामोश; और वो जोश से फड़फड़ाते
आज़ाद बुलबुलो के तराने·····ये सब
क्यों आज याद आए ही जा रहे है
याद आए ही जा रहे हैं
हमे इस नुचे-खुचे
बुच्चे आशियाने मे
आज ?

× ×
× ×

मालवा से आरोहण-समारंभ
···स्यात्वाद । बर्गसॉ । माचवे ।
मुक्तिबोध । मार्क्सवाद । दृढ़तर
सुरुचि के नाना आयाम । भारत ।
अज्ञेय । तार-सप्तक । और
फिर
यात्राएँ ।—यात्राओं के मंच ।
इप्टा । सी-पी-आई । और
कलाकारों की 'अँधेरी' और ज़िद्दी
चित्तॉ जीनीयस और पी-सी—
समस्त
आघातो संघर्षों
के बीच उनसे
बादलों - बिजलियों
के ऊपर—

वही शिखर
सम्मुख
सदैव
अपना ऊर्ध्व
अन्तर—
एकान्त
सजग - सजग सा

3. और एकान्ता-सहचरा प्रकृति

सागर - तट की
छाँवली,
नयन - भरे
आकाश ।
विदा - क्षितिज
स्मृति मे लिये
मनु - मानस
न हताश ।।

श्रुति के लिए

रंगीन प्यारी फ़ाख्ती
खुश रहो !

पहली पहली
गुटुरगूँ गुटुरगूँ गुटुरगूँ
मम्मा की सूक्ष्म प्रतिभा की
एक सीधी सफ़ेद लपट
हल्के हल्के नाचती-सी हुई
अपने ही आनन्द में

रंगीन परी उजली रोशनी
पहने कभी-कभी
तारो के बीच से
हमें झाँकती
कभी-कभी
घास की पत्तियो के
बीच से हरी सफ़ेद
और फिर जाने कहाँ से
गुटरगूँ गुटरगूँ—
सुनाई पड़ने लगती ।

मैं तो हैरान
यह कैसा बचपने का
अनोखा खेल है । तारे
घास के हरे-सफ़ेद तिनके
प्रिय मीठी मासूम गुटरगूँ

अरे !

अप्रैल, 1985

1

वल्ले ! वल्ले !
कोई राज़ की बात जैसे
कानों-कान फैल जाय
तूने दिलो-दिल यह् कविता
लिख दी
अचानक
कैसे आखिर कैसे !!
और तुझे यह भी कैसे मालूम हो गया,
मेरी शाइरा दोस्त,
कि इतना अकेला हूँ मै, वग़ैरा·····?
[ओ हो, मगर वो तो
मुस्कराना हि कह देता है सब कुछ···यानी—
मुझ-सा नादान भी शाइर हो कोई दुनिया में !]

2

तो हाँ शायद कि
शायद कि शिकायत न हो अब आइन्दा,
खुदा करे, मुलाकात ही हो उसकी बजाय !—
इक लम्हे भर ही सही
परस्पर निर्भर
फिर मुक्त—
इक गीत की लय हो जैसे
या कोई ख़याल जैसे
मतले में ग़ज़ल के बँध जाय,

फिर राग मे खो जाय
होकर उन्मुक्त, ऐसा
अन्तर में बसा ! या
कोई एक ही भाव हो जैसे,
एक ही द्वन्द्व का अपनाव
इक लम्हे भर,
फिर मुक्त
अपना ही राग हो जैसे !

तो···हम उम्मीद करें ना ?
शायद कि शिकायत न हो अब आइन्दा !

3

ए काश
मर्यादाओ के पहाड़
धूल-धूल हो
मेरे व्यक्तित्व-देश का
मैदान-सा कुछ हो गए होते !

संयम की चट्टान
एक ही जगह खड़ी-खड़ी
भूचाल-सी
हिलती ही न रह गयी होती, काश !···

फिर भी, मेरी शाइरा दोस्त,
खूब हुआ जो कुछ हुआ ! खूब हुआ !

मैं
भरे एकान्त का गीत अपना
आप ही आप गुनगुनाता रहा
एक तरफ बैठा

उसी चट्टान-सा,
पहाड़ों को मैदान ही समझता
अपने गीत मे
(जिसे तूने सुन भी लिया—न जाने कैसे—
एक लम्बे गहरे अन्तराल से !)

4

अब
जब कि हम उस उम्र को आ पहुँचे है
जिसमे कि, देखो न,
प्रेम के मानी है कुछ और
दोस्त - इन्सान के मानी है कुछ और,
और तक़रीबन् हर चेहरा जब कि
अपना ही नज़र आवे है,
क्या कहें उसमें तब—
रूमान के मानी क्या है,
इन्सान के मानी क्या है,
और यह भी कि खुदा क्या है ईश्वर क्या वगैरा···

फूल की हर पंखड़ी पर
ओस की हर बूँद खुदा
ओस की हर आँख ईश्वर
और हम तुम सब
कुछ पौदों के साये है गोया
हिलते हुए धूप और मिट्टी में
जागते सोते हिलते-मिलते हुए
उसी में
जैसे सभी सायो मे
हमी फैले हुए हों···है न ?

इसके सिवा
कही क्या है
कुछ भी तो नही। और् है तो
तू ही बतला
क्या है, मेरी शाइरा दोस्त !

हॉ मन के चीते है—
संशय चीते ?
या दिल के शेर
घबराए हुए - से···शेर
उन्ही सायों में
आँखें चमकाते हुए
या झपकाते
आमने-सामने
एक-दूसरे की आँखो मे
इक् लम्हा
परस्पर निर्भर
फिर लीन
वही कहीं···वही कही ?

और यह भी
उन सायो का
ख़याल ही होगा, मै तो जानूं,
गुन-गुन करता ख़याल, तेरी सौ,
कुछ ऐसा ही मुझे तो लगे है,
मेरी शाइरा दोस्त, हॉ बस,
और कुछ नही !

आइता—कप्पा आइता—कप्पा

यूनानी वर्णमाला का कोरस

[एक नोट ·

जैसाकि स्पष्ट है यह कविता एक सामूहिक गान के रूप मे लिखी गई है। किसी भी सामूहिक गान मे निर्देशक का महत्वपूर्ण रोल होता है। जरूरी नही कि पदों को जितनी बार जहाँ-जहाँ दोहराया गया है सभी बच्चे वही-वही उतनी ही बार दोहराएँ। यह सामूहिक गान की स्पिरिट और तज्जनित मूड पर निर्भर करेगा। (यानी निर्देशक पर)।

इस गीत में मेरी यह दृढ़ मान्यता निहित और स्पष्ट है कि भारत मे आर्य पूर्व, आर्य, यवन, बौद्ध, शक, तुर्क-मगोल, और इस्लाम इन सभी के दौर मे साम्प्रदायिक विष वैमनस्य नही फैला, उस ढग से कदापि नही फैला जिस ढग से अग्रेजो के आने के बाद, खासकर स्वतन्त्रता की हमारी पहली लडाई सन् '57 के बाद, फैलाया गया। तुर्को-मगोलो मे चगेज खाँ या हलाकू ने जो नगर जलाए, लूट-पाट की उसके पीछे भावना साम्प्रदायिक न होकर विशुद्ध रूप से लूट-पाट की ही थी।

स्वय महमूद गज़नवी की एक स्वर्ण मुद्रा से प्रकट है जो हाल ही में मिली है। उसके एक ओर लक्ष्मी की मूर्ति है और दूसरी ओर 'श्री' शब्द नागरी अक्षरो मे अकित है। हिजरी के साथ सवत् भी दिया हुआ है। मूर्ति-भजक शासक के सरकारी सिक्के पर लक्ष्मी की मूर्ति तथा 'श्री' शब्दांकन हमे एक बार फिर गम्भीरता से कुछ सोचने पर मजबूर करती है। यही नही, महमूद गजनवी के आश्रित प्रसिद्ध विद्वान 'अल्बेरूनी' ने अपनी पुस्तक 'भारत' में बहुत प्रशसापूर्वक यहाँ के ब्राह्मण विद्वानो का उल्लेख किया है। उसने भारतीय दर्शन, ज्योतिष, गणित आदि का जो ज्ञान प्राप्त किया उसकी सूचना भी दी है।

इसके बाद 'बल्बन' के राज्यकाल का एक महत्वपूर्ण अरबी दस्तावेज भी देखने योग्य है, जिसमे उस समय के इस्लाम प्रचार के कुछ रोचक तथ्य ज्ञात होते हैं, 'मलिक काफूर' के राज्य-पाल काल मे मैसूर के एक राजकुमार ने स्थानीय इमाम की पवित्र दिनचर्या से प्रभावित होकर उनसे याचना की कि वो उन्हें इस्लाम धर्म में दीक्षित कर लें। उन्होने उत्तर दिया "आप ऐसे दीक्षित नही हो सकते। पहले आप अपने पिता से अनुमति ले आइए। यदि उन्हे कोई ऐतराज न हो तो फिर आगे सोचा जा सकेगा।" राजकुमार को पिता की अनुमति मिल गई। राजकुमार ने दिल्ली की यात्रा की और हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया के दर्शन किए।

यह सारा विवरण राजकुमार ने स्वय अरबी मे लिखा है। उक्त सूचना मुझे (फारसी, अरबी, उर्दू के एक अतिसम्मानित विद्वान) स्व० प्रो० 'जिया अहमद बदायूनी' से प्राप्त हुई।

प्राचीन युगो में कुछ बर्बर जातियो, जैसे तुर्कों और मगोलों की कुछ इस्लाम पूर्व जातियो को छोड़कर, ज्ञान की पिपासा, देश-विदेश, जाति-जाति के सस्कृति—इतिहास के बारे मे उत्कट जिज्ञासा सर्वत्र व्याप्त मिलती है। इसका प्रमाण उस युग के अनगिनती यात्रियों के यात्रा-विवरणो से मिलता है।

मुझे पूरा विश्वास है 'सिकन्दर' के हमले के बाद यह आपसी मेल-जोल, और बढ़ती हुई जिज्ञासा और भी तीव्रता से यूनान और भारत में फैलती गई, यह मान लेने मे भी कोई हर्ज नही होना चाहिए कि हो न हो इसका आरम्भ मिठाइयो की इसी दावत से हुआ हो, जिस पर यह गीत प्रस्तुत किया जा रहा है!!

जब पोरस ने सिकन्दर की दावत की तो सिकन्दर ने हिन्दुस्तानी बच्चो को बुलवाया। उनके लिए बहुत-सी यूनानी मिठाइयाँ मँगवाईं। पोरस ने भी, ख़ासकर खीर और रसमलाई और अमीरस नाम का एक पेय सिकन्दर के लिए खासतौर से मँगवाया। सिकन्दर ने बच्चों के साथ मिलकर उसका आनन्द लिया।

इस अवसर पर बच्चों ने यह गीत उसी समय बनाकर गाया। बीच-बीच मे, सिकन्दर तुक जोड़ने के लिए अपनी भाषा मे कुछ शब्द कोरस के रूप मे गा उठता था। बच्चे भी उन शब्दो को उसके साथ मिलकर गाने लगते थे।

सिकन्दर के तुकों और कोरस में एक खास बात यह थी कि तुक और कोरस के शब्द सारे के सारे यूनानी वर्णमाला के ही अक्षर मात्र थे। मकसद यह था कि साथ मिलकर, हँसी-खुशी, खाते-पीते एक-दूसरे की भाषा की बुनियादी आवाजे कठस्थ हो जाएँ, बच्चे यह सब बहुत जल्द कठस्थ कर भी लेते है, सिकन्दर भी युवा ही था और मौजमस्ती और गीत-कविता आदि बहुत पसन्द करता था।]

बड़ा सिकन्दर वाह वाह
बड़ा सिकन्दर वाह वाह
बड़ा सिकन्दर वाह वाह
दरियाओं को ठेलता
हिन्दुस्तान में आया हँसता खेलता

अल्फ़ा बेटा गम्मा डेल्टा।
अल्फ़ा बेटा गम्मा डेल्टा।
अल्फ़ा बेटा गम्मा डेल्टा।
A B Γ Δ

राजा बेटा
बड़ा सिकन्दर जी का ढेटा
बड़ा सिकन्दर वाह वाह
यूनानी में सीटी देता...... सी ऽऽ टी ऽऽ !
वाह वा

एप्सिलन् ज़ेता सीटी देता
एप्सिलन् ज़ेता सीटी देता
E Z
एप्सिलन् ज़े ऽऽ ता ऽऽ

राजा बेटा बड़ा सिकन्दर।
वाह वा
बड़ा सिकन्दर वाह वा।

एटा थेटा वाह वा
एटा थेटा वाह वा
एटा थेटा...........
H Θ
एटा थेटा...... वाह वा.

कूद के बोला बड़ा सिकन्दर
नाच के बोला वाह वा
नाच के बोला बडा सिकन्दर

हप्पी हप्पा
आइता कप्पा

I K

आइता, कप्पा वाह वाह
आइता कप्पा गप्पी गप्पा
आइता कप्पा वाह वाह

I K

खूब हँसाता बड़ा सिकन्दर
खींच के अपना लम्बा मूँ

लम्बा मूँ
लम्बा मूँ

Λ M

यूँ ! यूँ ! नूँ ! नूँ !
नूँ नूँ

NN

खींच के अपना लम्बा मूँ नूँ नूँ

Λ MNN

वाह वाह.....

अरे सिकन्दर विक्रम वीर
खीर अभी की पी ऽऽ जा
खीर अभी की पी ऽ जा, पी ऽ जा

क्सी अमीक्रन पी पी
क्सी अमीक्रन पी पी
क्सी अमीक्रन Π Π

ξ O Π Π

पी.... पाइ पी...... पाइ
पी भाइ पी...... पाइ Π
क्सी अमीक्रन... पी.... पाइ

हँस के बोला विक्रम वीर
लाओ खीर
रासमलाई लाओ!
रासमलाई लाओ!
मिल के खाओ पीओ आओ
लेकिन देखो भाई
रस न टपकाओ !
हाँ भाई
रहो सिग्मा टाओ
P Σ T
रहो सिग्मा टाओ
P Σ T
रस न टपकाओ !

वर्ना वर्ना वर्ना वर्ना वर्ना वर्ना.....!
वर्ना पेट में फिसलन होगी
मीठी मीठी फिसलन होगी

उप्सिलन फी

Υ Φ

उप्सिलन फी

उप्सिलन फी

खूब सी खूब-सी फिसलन होगी

खी..... प्सी · खी.... प्सी खी.... प्सी

Χ Ψ Χ Ψ Χ Ψ

धीरे- धीरे धीरे धीरे
इसके रस में जो र मे गा
जो..... रमेगा : जो उ म गे गा
जो.... ओ मे गा
जो.... ओमेगा मौज क रे गा

जो ओमेगा मौज करेगा

Ω = ω

हाथ मिलाओ पोरस भाई
मौज करेगा पोरस भाई
राज करेगा पोरस भाई

ओ मे गा

Ω = ω

मणिपुरी काव्य साहित्य की एक विहंगम नन्हीं-सी झाँकी

[एक प्रयोग]

निवेदन

चार-पाँच साल हुए, मणिपुरी साहित्य समिति के एक प्रचार पैम्फलेट ने मुझे कौतुकवश आकृष्ट किया। उसी से अकस्मात् प्रस्तुत प्रयोग के लिए प्रेरणा मिली। मेरे मन मे सवाल उठा—क्या किसी नितान्त अपरिचित भाषा के सज्ञा-पदो को इस प्रकार मुक्त पदो मे नही बाँधा जा सकता कि वे अपने ध्वन्यात्मक आकर्षण के साथ हमारे कानों मे गूँजने लगे—और, सम्भवत: फलस्वरूप, हम उनके मूल सन्दर्भों को जानने के लिए थोड़े-बहुत उत्सुक हो उठे ? मेरी सृजनात्मक कुलबुलाहट ने जवाब दिया : बेशक बाँधा जा सकता है . कोशिश कर देखते है। अस्तु यह प्रयोग। बहुत से श्रोताओं ने, जिनमे दो अहिन्दीभाषी भाषा वैज्ञानिक भी शामिल है, इसे काफी दिलचस्प पाया। अत: 'पूर्वग्रह' के पाठको के समक्ष भी इसे प्रस्तुत करने की इच्छा हुई। (मेरी दो-तीन बड़ी और नयी कविताओ मे यह भी एक है।)

मणिपुरी नाट्यमच के जाने-माने कलाकार श्री सिंहजीत सिंह ने सौजन्यपूर्वक दो-तीन नाम सज्ञाओ मे आवश्यक सशोधन का सुझाव दिया, जिसके लिए मै कृतज्ञ हूँ। नीचे दिए सक्षिप्त नोट्स उनसे हुई बातचीत का प्रतिफल है :

लिपि	प्राचीन और ऐतिहासिक दस्तावेज आदि इसी लिपि में अकित होते आए। प्रदेश की जन-चेतना मे यही सरकारी लिपि है।
हिजन हिराओ	इस महाकाव्य मे 'नौका' के प्रतीक-माध्यम से प्राचीन धर्म दर्शन व्याख्यायित हुआ। अत. सन्तरण का भाव आध्यात्मिक भी है। कथा के अन्त मे नौका 'स्वर्गिक' हो जाती है। केन्द्रीय विषयवस्तु : किसने यह नौका बनाई, क्यो बनाई, कैसे बनाई।
नाङ् पोक् निङ् थौ	नायक शिव देवता से मिलता-जुलता है। वाहन, बैल। सर्पो की माला, आदि।

कुछ नितान्त अजनबी किन्तु आकर्षक शब्दों के मात्र उच्चारण—सुख के लिए ये मुक्तपद लिखे गए]

।। लिपि ।।

म हा रा जा
"खोङ् तेक् चा"
7 9 9
ई स वी :—

म णि पु री
ता म्र प त्र ।
और उसी लिपि मे——
"चै था रोल कुम् बा ब ऽ"

आ ज भी
सु र क्षि त है

आ ज भी
रा ज वं श इ ति हा स
वि व र ण के
ले ख न में

आ ज भी प्र—
यो जि त । व ह लि पि ।
अ न्त रंग—

रू प से आ ज भी प्र यु क्त ।

म हा रा जा "खोङ् ते क् चा"
के यु ग से ।—7 9 9
ई० । आ ज त क !

।। औग्—री सूर्य स्तुति ।।

आ ज त क
" नो ङ् - दा ला इ रे न्··· "
आ ज तक
" नो ङ् - दा ला इ रे न
पा खं ङ् - बा "

की या द
म णि पु रि यो के
म न - मस्तिष्क मे
ह री है
आ ज त क।

रा ज ति ल कों प र
" औ ग् - री "
सू र्य दे व स्तु ति की
प्र स्तु ति
की व ह
दी र्घ
प र म्प रा
जी वि त
है ।
आ ज त क
म णि पु री ज न
— ज न - ज न का —
मा नो
रा ज ति ल क ही
" औ ग् - री " - स्तु ति में
सू र्य दे व
क र ते आ ये
आ ज त क।

आ ज त क
"नो ङ् - दा ला इ रे न्
पा ख ङ्
बा" के
यु ग से ।
ई स्वी स न्
3 3 ! "औ ग्री"
स्तु ति यह
दे ख ले चा हे तो
"ल यि
श्रा
फा म्"
मे !
ल यि श्रा फा म् मे !
ल यि श्रा फा म् में !

।। नौकाओं का मेला ।।

और···वो, वो, वो !
तीर-सी भागती स र्रं र्रं र्रं···
स र्रा टे से
इ स ती र से
उ स ती र को
नौ का एँ ही
नौ का एँ···
दू र त क
"हि ज न हि रा ओ" में
नौ का एँ नौ का एँ···
वि ज य - स्प र्धा
की हो ड़ में स र्रा ती
भा ग ती जा तीं···

क था का दी र्घ त म
पा ट है···
" हि ज न हि रा औ "। दे खो
क था का पा ट। ··· औ र भी
" हि ज न हि रा ओ " के

इ स म हा का व्य मे
ए क से ए क भ रे
वि स्मय का री रो मां च क
आ ख्या न। ···
ए क से एक···!

।। मोइराँ साइओन् रासो ।।

" मो इ राँ सा इ ओ न् "।
नि धि है नि धि
क था ओं की नि धि।
" मो इ राँ सा इ ओ न्"
[हिन्दी 'मोइ रंग साँइयाँ' नहीं !
—नहीं !]
" मो इ रॉ सा इ ओ न्" की जो
अन्तिम क था :
" खं भा थो इ ली"
रा सो :
ए क-क म चा ली स ह जा र पद
पू रा रा सो-रू मा न।

म णि पु री मा न स का
स च मु च
'आ धु नि क
मा न।'

“अं-आ हल् सिंह,” कवि।

“अं-आ हल् सिंह” ही ने
इसमें
पुण्य प्रकृति के
ताने
विविध वितान
सुरलोकों से लेकर मानो
लोक-सुरों के
अद्भुत्
सांग··· और
मनोहर मोहक
गान.
“अं-आ हल सिंह” है इसका कवि-

देखो, फैले यहाँ
प्रकृति के
कैसे-कैसे
रंग-बिरंगे
विविध विधान!

“अं-आ हल् सिंह···मोइरा—
“मोइरा साइओन्” “मोइरा साइओ
[‘मोइ रंग साँइयाँ’ नहीं!]

॥ प्रेम कादंबरी ॥

“पां थोइ-बी” की
प्रेम-कहानी।

"पां थो इ - बी खो ङ् - गु ल" थी
कि स की प या री ?
कि स की प्रा ण - पि या री ?

—"नो ङ् पो क् नि ङ् थौ" की।
"नो ङ् पो क् नि ङ् थौ" की।

दो नो आ ज भी जी वि त
3 री स दी से।
गा य क ज न मा न स मे।

म णि पु र मे ज ब प ह ले - प ह ल
न ये - न ये आ वा सी ब न ने

आ ये प र दे शी ब न जा रे
त ब की !
दो का द म्ब रि याँ है:

1. "पो इ र इ तो न्" /
2. "कु न्थ क -
पा"...

1. "पो इ र इ तो न्"
2. "कु न्थ क -
पा"...

ये का द म्ब रि याँ।

बा ण भ ट्ट इ न के अ ज्ञा त्।

"पो इ र इ तो न्"
"कु न्थ क - पा"

"पो इ र इ तो न्" "कु न्थ क - पा
"पो इ र इ....."

कवि घंघोल देता है

कवि घंघोल देता है
व्यक्तियों के जल
हिला-मिला देता
कई दर्पनों के जल
जिसका दर्शन हमें
शान्त कर देता है
और गम्भीर
अन्त में

व्यक्तित्व का अदृश्य सागर

प्रेम

द्रव्य नही कुछ मेरे पास
फिर भी मै करता हूँ प्यार
रूप नही कुछ मेरे पास
फिर भी मै करता हूँ प्यार
सांसारिक व्यवहार न ज्ञान
फिर भी मैं करता हूँ प्यार
शक्ति न यौवन पर अभिमान
फिर भी मै करता हूँ प्यार
कुशल कलाविद् हूँ न प्रवीण
फिर भी मैं करता हूँ प्यार
केवल भावुक दीन मलीन
फिर भी मैं करता हूँ प्यार।

मैने कितने किये उपाय
किन्तु न मुझसे छूटा प्रेम
सब विधि था जीवन असहाय
किन्तु न मुझसे छूटा प्रेम
सब कुछ साधा, जप, तप, मौन,
किन्तु न मुझसे छूटा प्रेम
कितना घूमा देश विदेश
किन्तु न मुझसे छूटा प्रेम
तरह-तरह के बदले वेष
किन्तु न मुझसे छूटा प्रेम।

उसकी बात बात में छल है
फिर भी है वह अनुपम सुन्दर
माया ही उसका सम्बल है
फिर भी है वह अनुपम सुन्दर
वह वियोग का बादल मेरा
फिर भी है वह अनुपम सुन्दर
छाया जीवन आकुल मेरा
फिर भी है वह अनुपम सुन्दर
केवल कोमल, अस्थिर नभ-सी
फिर भी है वह अनुपम सुन्दर
वह अन्तिम भय-सी, विस्मय-सी,
फिर भी कितनी अनुपम सुन्दर।

1937, 1938 के आसपास

प्रेयसी

एक

तुम मेरी पहली प्रेमिका हो
जो आइने की तरह साफ़
बदन के माध्यम से ही बात करती हो
और शायद (शायद)
मेरी बात साफ़-साफ़
समझती भी हो।
प्यारी, तुम कितनी प्यारी हो।
वह काँसे का चिकना बदन हवा में हिल रहा है
हवा हौले-हौले नाच रही है,
इसलिए···

—तुम भी मेरी आँखों मे
(स्थिर रूप मे साकार रहते हुए भी)
हौले-हौले अनजाने रूप में
नाच रही हो
हौले-हौले
हौले-हौले यह कायनात हिल रही है

दो

गन्दुमी गुलाब की पाँखुड़ियाँ
खुली हुई हैं
आँखों की शबनम

दूर चारों तरफ़
हँस रही है
यह मीठी हँसी
जो मेरे अन्दर घुलती जा रही है
तुम हो ।
तुम्हारा सुडौल बदन एक आबशार[1] है
जिसे मै एक ही जगह खड़ा देखता हूँ
ऐसा चिकना और गतिमान
ऐसा मूर्त सुन्दर उज्ज्वल

तीन

यह पूरा
कोमल काँसे में ढला
गोलाइयो का आईना

मेरे सीने से कसकर भी
आज़ाद है
जैसे किसी खुले बाग मे
सुबह की सादा
भीनी-भीनी हवा

यह तुम्हारा ठोस बदन
अजब तौर से
मेरे अन्दर बस गया है ।

1. जल-प्रपात

मेरे अन्दर कसी···

मेरे अन्दर कैसी एक अमृत की बूँद है,
अमृत की एक टिम-टिम, अनबुझ,
साँसो की तह मे एक अमर
अनबुझ-सी टिम-टिम, अदृश्य-सी,
मगर है·····
वह
बँद
अमर ।

खूब गौर से अपने अन्दर
देखो,
···,
अगर तुम खूब खूब खूब
देखो···

वह दूर
क्षीण
झिलमिलाहट निश्चित अमर है ··।

"मै देख रही हूँ ।"

चिकनी चाँदी-सी माटी

चिकनी चाँदी-सी माटी
वह देह धूप में गीली
लेटी है हँसती-सी ।

तुमने मुझे

तुमने मुझे और गूँगा बना दिया
एक ही सुनहरी आभा-सी
सब चीज़ों पर छा गयी

मैं और भी अकेला हो गया

तुम्हारे साथ गहरे उतरने के बाद
मै एक ग़ार से निकला
अकेला, खोया हुआ और गूँगा

अपनी भाषा तो भूल ही गया जैसे
चारों तरफ़ की भाषा ऐसी हो गयी
जैसे पेड़ों पौधो की होती है
नदियों में लहरों की होती है

हजरत आदम के यौवन का बचपना
हजरत हौव्वा की युवा मासूमियत
कैसी भी ! कैसी भी !

ऐसा लगता है जैसे
तुम चारो तरफ़ से मुझसे लिपटी हुई हो
मैं तुम्हारे व्यक्तित्व के मुख मे
आनन्द का स्थायी ग्रास···हूँ

मूक ।

प्रकृति-रूप

एक चिकना चौडा आबशार

सॉवला संगमर्मरी
आधा खिला व्यापक-सा गुलाब एक
मह-मह सुगन्ध शक्ति में
स्पष्टत: सुरक्षित

अविरल वह स्थिर आबशार
खुली साँस की
सांख्यिकी मे बॅधा
वह हँसता रूप ।

गुलाब बाडी टपक रही है ।
हम आदिवासी-से मौन
भीगे हुए खडे है

एक ठोस बदन अष्टधातु का-सा

एक ठोस बदन अष्टधातु का-सा

सचमुच ?
जंघाएँ दो ठोस दरिया
ठैं रे हुए-से
मगर जानता हूँ कि वो
बराबर-बराबर बहुत तेज
रौ मे है
ठै रा हुआ-सा मैं हूँ मेरी
दृष्टि एकटक्

ठोस वक्ष कपोल उभरे हुए चारों
निमंत्रण देते चैलेज-सा
चारो एक साथ
अपनी स्थिरता मे, चल
काल की तरह

चरण
है वही मगर दर अस्ल है नही वहाँ
वो उस अष्टधातु की मूर्ति को
कहीं लिये जा रहे है
शायद
मेरे व्यक्तित्व के अदृश्य सागर की ओर।।

रोशनी

मालिश तुम्हारे बदन की
मेरे बदन की करती है
हर सूर्योदय मे

हर सुनहरी सुबह
तुम्हारा बदन है
एक साँवलेपन के
आर-पार नाचता

बार-बार
हर
हर स्सुबह

28. 2. 84
8 बजे

गज़ल

वो दुश्मन मेरा इतना अच्छा है क्यों
जो अपना नही है वो अपना है क्यों।

मुझे बादशाहत नहीं चाहिए
मगर तू ही कुल मेरी दुनिया है क्यो।

तुम्हे याद करता हूँ एकान्त मे
जुनूं मेरा पहले से अच्छा है क्यों ।

तुम्हे मुझसे मिलना गवारा नही
मुझे और जीना गवारा है क्यों।

मेरे दिल मे रातों में यह तुझ बग़ैर
बगूला-सा रह-रह के उठता है क्यों।

किसी और के हो दिलो जान से
मेरे साथ फिर ये तमाशा है क्यो।

किसी को यहाँ जानता कौन है
किसी के लिए जी भटकता है क्यो।

ज़ुबाँ दर्द की सिन्फ़े नाजुक से है
वो 'शमशेर' का शेर सुनता है क्यो।

•••